इकाई 8 काल का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

8.0 अधिगम प्रतिफल

8.1 प्रस्तावना

8.2 काल का स्वरूप

8.3 काल के भेद

8.4 अभ्यास/बोध प्रश्न

8.5 सारांश

8.6 शब्दावली

8.7 संस्तुत ग्रंथ सूची

8.0 अधिगम प्रतिफल

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद -

- आप जान सकेंगे कि कालगणना की जो विधियाँ बताई गईं हैं उस काल का स्वरूप क्या है।
- आप यह जान सकेंगे कि वेद, वेदाङ्ग, दर्शन तथा पुराण आदि संस्कृत साहित्य मे वर्णित काल के अवयवों के आधार पर आगे के आचार्यों ने निष्कर्ष रूप में काल को क्या माना है।
- काल और सृष्टि प्रक्रिया के सम्बन्ध को समझ कर काल की पूर्ण वैज्ञानिकता को जान पाएंगे।
- आप काल के आधिदैविक एवं आधिभौतिक स्वरूप में अन्तर कर सकेंगे।
- आप काल के क्रियाविज्ञान एवं सृष्टिविज्ञान में इसकी भूमिका को समझने में सक्षम हो पाएंगे।

8.1 प्रस्तावना

अब तक आपने इस से पहले की इकाइयों में भारतीय शास्त्रों में तथा आधुनिक विज्ञान के अनुसार काल को जाना है। इस इकाई में आप उन सब शास्त्रों के आधार पर अंतिम रूप में आप जानेंगे कि काल को किस स्वरूप में परिभाषित किया गया है जिसके आधार पर भारतीय ज्योतिष आचार्य आगे उसकी गणना करते हैं।

8.2 काल का स्वरूप

कालगणना का प्रसंग उपस्थित होते ही सर्वप्रथम प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह काल क्या है? काल का विचार प्रकृति में सर्वप्रथम कब उत्पन्न हुआ? कालक्रम का प्रारम्भ एवं परिसमाप्ति कब होती है? ज्योतिष का प्रमुख प्रयोजन **"कालगणना"** है, तो काल कोई पदार्थ है ? कोई ऊर्जा है या कुछ और? आइए इस पर चर्चा करते हैं। व्याकरण की दृष्टि से 'कालः' पद को आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश **में 'कल्-णिच्+अच्'** से व्युत्पन्न माना है। चुरादिगण में 'कल' धातु के अर्थ 'धारण करना, प्रेरणा करना, अधिकार में रखना, जाना, आसक्त होना' आदि दिये हैं। महर्षि यास्क ने लिखा है-**"कालः कालयतेर्गतिकर्मणः"** (नि.2/25) **इससे स्पष्ट है कि काल वह है, जिसमें प्रेरण, धारण, गमन, अधिग्रहण आदि कर्म विद्यमान होते हैं।** इस प्रकार काल शब्द की उत्पत्ति √कल संख्याने एवं √कल गतौ धातु से होती है। काल में संख्या एवं गति दोनों का संयोग है। वस्तुतः काल का सम्बन्ध गति और संख्या दोनों से है। सौर पिण्डों की गति के साथ काल (कलनात्मक काल) का आविर्भाव होता है। काल गति सापेक्ष है। जब तक गतिशील सौर पिण्ड नहीं बनते तब तक काल का अस्तित्व सम्भव नहीं। सौर पिण्डों की गति से ही काल का भान होता है।

काल को ले कर वस्तुतः दो प्रमुख अवधारणाएं बताई गई हैं। पहली अवधारणा काल को ब्रह्माण्ड की घटनाओं के संयोग से उत्पन्न एक प्रभाव मानती है दूसरी अवधारणा काल को सृष्टि रचनाक्रम में निर्मित एक पदार्थ मानती है। पूरा विश्व में चेतन पदार्थ एकरस व्याप्त है, तथा सभी अंग एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। इस अर्थ में एक ही ब्रह्म है। वही ब्रह्म काल का अधिष्ठाता है और उसी से काल उतपन्न होता है इस विषय को आगे विस्तार से बताएंगे। पुरुष को चार रूपों में देखते हैं-

- **क्षर पुरुष :** बाह्य भौतिक रूप का हमेशा क्षरण होता रहता है।
- **अक्षर पुरुष** : सर्वदा बदलने पर भी किसी वस्तु का नाम, कर्म रूप में अदृश्य (कूटस्थ) परिचय वही रहता है। वह अक्षर पुरुष है।
- **अव्यय पुरुष :** किसी संहति के अंश रूप में पुरुष में कोई परिवर्तन नहीं होता, एक भाग में जितना कम होता है, दूसरे भाग में वह बढ़ जाता है। इसे अव्यय पुरुष कहते हैं।
- **परात्पर पुरुषः** बहुत सूक्ष्म या बहुत बड़े स्तर का अनुभव नहीं होता या वर्णन नहीं हो सकता। यह परात्पर पुरुष है।

पुरुष के ये चारों प्रकार मुख्यतः काल के अलग-अलग प्रभावों के अनुसार पर निर्धारित किये गये हैं।

नित्य काल- सदा लोकों (व्यक्ति या विश्व) का क्षरण करता है। एक बार जो स्थिति चली गयी, वह वापस नहीं आती। बच्चा बूढ़ा हो सकता है, वापस बच्चा नहीं हो सकता। अतः इस काल को मृत्यु भी कहते हैं। इसकी गणना नहीं होती। यही क्षर पुरुष है। इस

तरह का काल-परिवर्तन सदा एक ही दिशा में होता है, पर कुछ प्राकृतिक घटना प्रायः चक्रीय क्रम में होती हैं, जैसे दिन-रात, मास, वर्ष। इनके मान में भी सूक्ष्म अन्तर होता है, पर व्यवहार में इनको स्थिर मान लेते हैं। प्रायः इसी के समान चक्रों में हमारा यज्ञ चलता है।

जन्य काल - यज उत्पादन (जनन) चक्र की माप है, अतः इसे जन्य काल कहते हैं। इसकी माप और गणना होती है, अतः इसे कलनात्मक काल कहते हैं। इसमें अन्य गणनाओं की तुलना में एक कठिनाई है। यान्त्रिक गति दर्शक के अनुसार बदलती रहती है। पर प्रकाश की गति सदा एक जैसी रहती है। हम दोनों को एक ही मान कर गणना करते हैं जो सही नहीं है, पर हमारे पास इसके समाधान का उपाय नहीं है। अतः भगवान् ने गीता में अपने को गणनाओं में काल को 'सबसे रहस्यमय गणना' कहा है।

अक्षय काल- अव्यय पुरुष या पूर्ण संहति को देखें तो कोई परिवर्तन नहीं होता। कुछ चीजें मिलकर नया रूप बनाती हैं, कुछ पुनः नष्ट हो जाती हैं। इनको सांख्य में सञ्चर-प्रतिसञ्चर या वेद में सम्भूति-विनाश कहा है। इसी चक्र में संसार चल रहा है, अतः इसे धाता और विश्वतोमुख कहा है।

परात्पर कालः- बहुत सूक्ष्म या बहुत बड़े स्तर का अनुभव मशीन द्वारा भी नहीं हो सकता। उसमें भी कुछ परिवर्तन होता है। वह परात्पर काल है। इसका कोई वर्णन नहीं है।

8.3 काल के भेद

भारतीय ऋषि परम्परा में काल पर विस्तृत शोध किया गया है एवं भारतीय मनीषियों ने काल को दो रूपों में देखा है। वेद में भी काल के दो स्वरूप एक अकलनात्मक और दूसरा कलनात्मक स्वीकार किये गए हैं। पहले काल को बारह मासों व चक्रीय गति से युक्त सूर्यादि से सम्बद्ध कहा उसके पश्चात काल को जगत के निर्माण में 720 तत्वों का उत्पादक तथा अजर एवं अमर भी कहा है। सिद्धान्त ज्योतिष के ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त का भी यही मत है - काल दो प्रकार का है एक तो नित्य एकरस जो सभी लोकों (जड़ व चेतन) का अंत करता है उनको नित्य क्षीण करता है इसको अकलनात्मक काल की संज्ञा दी गई है। दूसरा काल वह है जो कलनात्मक है जिसके अंतर्गत त्रुटि, क्षण, मुहुर्त, दिवस,मास, सम्वत्सर आदि गणना करने योग्य भौतिक काल आता है। श्रीमद्भगवत गीता में भी इसी बात की झलक मिलती है। हालाँकि भगवद्गीता की गणना कालगणना के ग्रन्थों में नहीं की जाती एक ही का दर्शनों भारतीय ही साथ और है निकट के उपनिषदों वह परंतु , है। विस्तारइस कारण काल के दार्शनिक स्वरूप का अवश्य परिचय कराती है। गीता के आठवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने कहा कि जो कालचक्र का ज्ञान रखते हैं वही सत्य में ज्ञानी है। काल सर्वज्ञ है। यह सर्वाहारी, सर्वभक्षी, लोक से परे, अभेद्य, अजय और किसी भी नियंत्रण से परे है। काल क्या है, क्यों है और यह किसके लिए है? यह जानना ही काल को

जानना है। इसका स्वरूप क्या है, विस्तार क्या है और इसका अन्त क्या है? यह कोई नहीं जानता। क्या जो काल हमारे निर्देशतंत्र के सापेक्ष है वह पूरे ब्रह्माण्ड के निर्देशतंत्र के सापेक्ष भी है। जीवन, वय और आयु तो काल ने एक प्रकृति के जीवों के लिए भी सम नहीं बनाई है। क्या वास्तव में काल सभी के लिए समान है? परिवर्तन ही काल है। यदि आवृत्ति नहीं हो तो काल स्थिर होकर सम्पूर्ण जगत को स्थिर कर देगा। यही विनाश है, यही अंत है। शरीर का बढ़ना, बूढ़ा होना समय है। पृथ्वी का घूमना समय है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतम परिवर्तन होना, ब्रह्मा से लेकर कण तक में परिवर्तन काल का मानक है। नश्वरता परिर्वतनीय है लेकिन ईश्वरत्व अपरिर्वतनीय। इसलिए ईश्वर को कालातीत और प्रकृति को नश्वर कहा गया है।

गीता के ही दूसरे अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिससे सम्पूर्ण जगत उत्पन्न हुआ, फिर भी जिसमें कोई कमी अंदर जिसके में बाद व आई नहीं (प्रकार एक का परिवर्तन) जाएगी हो समाहित सृष्टि पूरी, फिर भी जिसमें कोई बढ़ोत्तरी (प्रकार एक का परिवर्तन) होगा भी आगे और है हुआ ऐसा ही से इच्छा उसकी साथ जिसके भी पहले और होगी नहीं, वही सबों में व्याप्त तत्व ईश्वर है। वही कालातीत है, जिसका नाश करने में कोई भी समर्थ नहीं। पाश्चात्य विज्ञान में एक अभिकल्पना की गई है। इसे प्रकृति चक्र कहा जाता है। इसे कार्नोट नामक विज्ञानी ने अभिकल्पित किया, इसलिए इसे कार्नोट चक्र भी कहा गया। इस चक्र में एक अनन्त दाता और एक अनन्त ग्राही की अभिकल्पना की गई है। अनन्त दाता से कुछ भी लें, परिर्वतन नहीं होता और ग्राही को कुछ भी दें परिर्वतन नहीं होता है। सब कुछ स्थिर है, यह आदर्श स्थिति है, लेकिन जगत का संचालन काल के परिर्वन को कहा गया है, आदर्श स्थिति प्राप्त करना का अर्थ है, काल का सम्पूर्ण होना। फिर से आवृत्ति होगी और नव काल का सृजन होगा। सृष्टि बदल जाएगी।

अकलनात्मक और कलनात्मक दोनों प्रकार के कालों का वर्णन गीता में है :-

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो, लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे, येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।। गीता 11/32

अर्थात् सम्पूर्ण लोकों का संहार करने वाला काल सबका क्षय करके मृत्यु का ग्रास बना देने को सक्षम है। यह काल महान परिमाण वाला है। हे अर्जुन! तुम्हारे प्रतिपक्ष में जो योद्धा लोग खड़े हैं? वे सब तुम्हारे युद्ध किये बिना भी नहीं रहेंगे। तुम उनको नहीं मारोगे फिर भी यह काल उनको अंत कर ही देगा। इसके बाद श्रीकृष्ण कहते हैं –

अहमेवाक्षयः कालो धाताऽहं विश्वतोमुखः।। गीता 10/33

अर्थात् हे अर्जुन! अक्षय काल जो कभी नष्ट नहीं होता है और विश्व के मुख के समान है अर्थात् जिस प्रकार मुख भोज्य पदार्थ का भक्षण करता उसको नष्ट करता है उसी प्रकार ये अकलनात्मक काल जो कि स्वयं अक्षय होते हुए भी संसार को अपना ग्रास बना नष्ट कर देता है।

यही कालभेद श्रीमद्भागवत पुराण में भी दृष्टव्य है। वहाँ कहा है –

एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम।
संस्थानभुक्तया भगवानव्यक्तो व्यक्त भुग्विभुः।।

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम्।
सतोऽविशेषभुगयस्तु स कालः परमो महान्।। 3/11/3-4

अर्थात् सूक्ष्मतम से सूक्ष्मतम एवं महान से महान वस्तु में व्याप्त हो कर व्यक्त पदार्थों को भोगने वाले सृष्टि में समर्थ अव्यक्त (अकलनात्मक) किंतु भगवान के लिए सर्वथा व्यक्त स्वरूप काल को भी अतिसूक्ष्म जानो। इस श्लोक में नित्य काल को ईश्वर के लिए व्यक्त एवं अन्य जीवों के लिए अव्यक्त बताया है।

उपर्युक्त सन्दर्भों के आधार पर कहा जा सकता है कि काल के दो भेद हैं- काल और अकाल।

काल का अर्थ है कलनात्मक काल अर्थात् जिसकी गिनती की जा सके। काल गतिशील एवं परिवर्तनशील है। यह सावधि काल है। न्यायदर्शन एवं वैशेषिक दर्शन में इसी काल को द्रव्य कहा गया है। दिशा को भी द्रव्य के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। **अकाल का अर्थ** काल का अभाव नहीं अपितु कलनात्मक काल के अभाव से है। अकाल की अवस्था में काल का अभाव नहीं रहता परन्तु काल की गिनती नहीं की जा सकती। अकाल कूटस्थ, अचल, और ध्रुव है। अकाल ही महाकाल है। वह अनादि और अनन्त है। यह निरवधि काल है। सूर्यसिद्धान्त (1.10-12) में भी काल के दो रूप माने जाते हैं। अकाल को लोकों को समेटने वाला अथवा अन्त करने वाला कहा है तथा काल को कलनात्मक स्वरूप वाला कहा है- **लोकानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।** वैदिक वाङ्गमय में इस निरवधि काल को तम रूप भी कहा गया है। उदाहरण के रूप में नासदीय सूक्त (ऋग्वेद 10.29.3) में कहा गया है-

तम॑ आसी॒त्तम॑सा गू॒ळ्हमग्रे॑ऽप्रके॒तं स॑लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम् ।
तु॒च्छ्येना॒भ्वपि॑हितं॒ यदासी॒त्तप॑स॒स्तन्म॑हि॒नाजा॑य॒तैक॑म् ॥

अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में निरवधि काल तम के रूप में विद्यमान था। तथा निरवधि काल से व्याप्त प्रकृति भी सर्वत्र साम्यावस्था में थी। सम्पूर्ण आकाश सूक्ष्म प्रकृति से व्याप्त था। ईश्वर के संकल्प से ही सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। उपर्युक्त मन्त्र में स्पष्ट कहा गया है सृष्टि के प्रारम्भ में निरवधि काल ही तम के रूप में विद्यमान था।

मैत्रायणी उपनिषद् (15) में कहा गया है- '**सूर्यो योनिः कालस्य**' अर्थात् सूर्य काल का जनक है। तत्रैव (मैत्रायणी उपनिषद, 16) बताया गया है कि ब्रह्म रूपी काल के दो रूप हैं- काल तथा अकाल। सूर्य से पूर्व काल अकाल के रूप में रहता है तथा सूर्य के बाद काल "काल" का स्वरूप धारण कर लेता है। काल "सकल" अर्थात् टुकडों में विभक्त

कलनात्मक रूप (जिसको गिना जा सकता है) वाला होता है, संवत्सर सकल काल का एक रूप है। यही कारण है कि अथर्ववेद (19.53.1) में काल रूपी सूर्य को उल्लेख प्राप्त होताहै-

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मि सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चित्स्तस्य चक्राः भुवनानि विश्वा।।

अर्थात् काल रूपी सूर्य सात प्रकार के रंग वाली किरणों को धारण करता हुआ दौडा चला जा रहा है। उसकी हजारों आँखे हैं। वह कभी बूढा नहीं होता, उसका बल-वीर्य कभी कम नहीं होता है। विद्वान् योगी लोग उस काल की सवारी करते हैं अर्थात् काल को मात देकर जीवित रहते हैं। सौरमंडल के सभी भुवन (ग्रह) उस सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं। काल सूर्य का दूसरा नाम है। सूर्य से आरम्भ होने के कारण काल संवत्सर कहलाता है। सूर्य से ही पृथिवी पर जीवन का संचार होता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि दिन और रात्रि कालचक्र (सौरमंडल के सृष्टिचक्र) के प्रवाह के द्योतक हैं। अतः सौरमंडल के सृष्टिचक्र के प्रवाहित होने के आरम्भ से सर्वप्रथम जो दिन हुआ वहीं से कालचक्र का प्रवाह आरम्भ होता है। कालचक्र परिवर्तन अथवा कालप्रवाह के विभिन्न सोपानों के परिज्ञान हेतु कालगणना का आश्रयण लिया गया है। कालगणना भी कालगति सापेक्ष हैं। अतः कालान्तर में 'काल' के गत्यर्थक भाव को छोड़कर 'काल' के गणनात्मक भाव का ग्रहण कर लिया गया। यही कारण है कि वैदिक साहित्य में भी काल का गत्यर्थक भाव प्राप्त होता है। वेदोत्तर काल में तो काल का गणनार्थक भाव ही प्रसिद्ध हो गया। काल शब्द की उत्पत्ति गत्यर्थक 'कल' से न मानकर गणनार्थक 'कल' से मानी जाने लगी। **'भाविभवद्भूतमयं कलयति जगदेष कालोऽतः'** (कालमाधव, उपोद्घात) चूंकि यह भविष्यत, वर्तमान एवं भूतमय जगत् की गणना करता है, अतः इसका नाम काल है।

8.4 अभ्यास/बोध प्रश्न

1. काल को किन्होंने द्रव्य माना है?

अ) महर्षि कपिल, आ) महर्षि वेदव्यास, इ) महर्षि कणाद, ई) महर्षि गौतम

2. काल सक्रिय द्रव्य है अथवा निष्क्रिय?

अ) सक्रिय, आ) निष्क्रिय, इ) दोनों, ई) दोनों ही नहीं

3. निम्न में से किनका संबंध काल से है?

अ) प्रकृति से, आ) ईश्वर से, ई) उपरोक्त सभी से

4. काल शब्द में 'कल्' धातु का अर्थ क्या है ?

5. सार रूप में काल शब्द का अर्थ क्या होगा?

6. काल की मुख्य दो विशेषता क्या हैं?

7. क्या काल सापेक्ष है?

8. सूर्य को काल का जनक किसने स्वीकार किया है?

8.5 सारांश

उपरोक्त विवेचन का सारांश यह है कि वैदिक विज्ञान काल को पदार्थ एवं प्रभाव दोनो रूपो में जानता है। काल समस्त ब्रह्माण्ड का बीज है एवं ब्रह्माण्ड में कार्यरत सभी बलों का मूल कारण है यह काल तत्व सृष्टिकर्ता ईश्वर से सीधे जुड़ा हुआ होता है एवं उन्ही के द्वारा नियंत्रित होता है यह काल का आधिदैविक स्वरूप है जोकि मूल प्रकृति तत्व संयोग से उत्पन्न होता है। काल का आदिभौतिक स्वरूप वह है जिसके अंतर्गत त्रुटि से लेकर ब्रह्मा की आयु पर्यन्त काल की गणना आती है। आधिदैविक काल सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एवं प्रलय करने वाला है और यह समस्त पदार्थों को गति प्रदान करता है आधिभौतिक में काल जीवों के व्यावहारिक जीवन को अहोरात्र मास ऋतु आदि के द्वारा प्रभावित करता है इसलिए भारतीय वैदिक काल विज्ञान को समझने तथा समझाने से पूर्व हमे सृष्टि रचना के वैदिक सिद्धान्त को भी समझना अनिवार्य होगा । काल अविनाशी है एवं यह चेतनवत व्यवहार करने के कारण ईश्वर का पुत्र भी कहलाता है जब तक आधुनिक विज्ञान परमात्मा एवं जीवात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता तब तक काल के मूल स्वरूप को समझना उसके लिए संभव नहीं है, काल की यह सर्वाधिक वैज्ञानिक एवं गूढ़ व्याख्या है।

8.6 शब्दावली

कलनात्मक – जिसका कलन यानी गणना किया जा सके

अकलनात्मक – जिसकी गणना संभव नहीं हो

परात्पर – जो परे से भी परे हो यानी अज्ञेय

अक्षर – जिसका क्षरण यानी नाश नहीं होता

यज्ञ – लोकोपकारक श्रेष्ठ तथा शुभ कर्म

ऋषिप्रणीत - ऋषियों द्वारा लिखित

क्रान्तद्रष्टा – दूरदर्शी, जिन्होंने वेद-मंत्रों का साक्षात्कार किया अर्थात् अनुभव किया

व्युत्पन्न – बना हुआ

चुरादिगण - संस्कृत की लगभग सभी 2000 धातुओं को 10 गणों में बांटा गया है, जिनमें से अन्तिम गण "चुर" धातु से शुरू होता है अतः उसको चुरादिगण कहते हैं

पर्जन्य – बादल-वर्षा

मिथुन	–	युग्ल अर्थात् जोड़ा
सर्वाहारी	–	सबको आहार (भोजन) बनाने वाला
सर्वभक्षी	–	सब कुछ खाने वाला
अभेद्य	-	जिसको तोड़ा न जा सके
अजय	–	जिसको जीता न जा सके

8.7 संस्तुत ग्रंथ सूची

- भारतीय काल दर्शन, महेश कुमार मिश्र 'मधुकर', आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, भोपाल, मध्यप्रदेश
- भारत वैभव, डॉ. ओमप्रकाश पांडेय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली
- इतिहास दर्शन, वासुदेव शरण अग्रवाल
- इलेवन पिक्चर्स ऑफ टाइम, डॉ. चंद्रकांत राजू

अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इ) महर्षि कणाद
2. इ) दोनों
3. ई) उपरोक्त सभी से
4. गति और संख्या
5. कलनात्मक अर्थात् जिसकी गणना की जाती हो उसे काल कहते हैं
6. कालनात्मक गतिशील एवं परिवर्तनशील है
7. हाँ
8. मैत्रायणी उपनिषद्